दशदिगन्तविजयी गो. श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज
और
अप्पय्यदीक्षित

लेखक : श्री हरिशंकर शास्त्री मी.शा.वे.वि. M.R.A.S.

संस्कृत साहित्य संसार में प्रधानता दर्शनशास्त्रों की है। दार्शनिक विषयों पर जितने ग्रन्थ संस्कृत भाषा में उपलब्ध होते हैं, उतने और वैसे प्रौढ ग्रन्थ संसार की अन्य किसी भाषा में प्राप्य नहीं है। इस विषय में प्रायः सभी इतिहासज्ञ एकमत हैं। दर्शनों में भी वेदान्तदर्शनका ही प्राधान्य है। यदि संस्कृतवाङ्मय से वेदान्तदर्शन को पृथक् कर दिया जाय, तो धड़से शिरको पृथक् करने के समान भयङ्कर और अनिचारयुक्त कार्य होगा। वेदान्तदर्शन संस्कृत वाङ्मयका उत्तमाङ्ग (शिर) है। सहस्रों वर्षों से भारत वर्ष में वेदान्तदर्शन पर विचार हो रहा है। वेदान्तदर्शनमें ही मानव विचारशक्ति की पराकाष्ठा है। जितनी सूक्ष्मता से इस दर्शन में विचार किया गया है, वैसा सूक्ष्म विचार अन्यत्र असम्भव नहीं तो दुष्प्राप्य अवश्य है। वेदान्तदर्शनका मूल उपनिषद् और व्याससूत्र है। प्राचीन समय में भी वेदान्तविषयक मतभेद विद्यमान थे। व्यासजी भी वेदान्तसूत्रों में पूर्वाचार्यों के मतभेदों का उल्लेख करते हैं, पर कहा जाता है कि शङ्कराचार्य के मायावाद के पश्चात् रामानुजादि आचार्यों के विभिन्नसिद्धान्तों के आविर्भाव के अनन्तर वेदान्तदर्शन अनेक साम्प्रदायिक शाखाओं में बँट गया है। साम्प्रदायिक मतभेद एवं उपासना के विषय में भी सूक्ष्मतम विचार इन साम्प्रदायिक आचार्यों ने किया है। ईश्वरोपासना के विषय में जो साम्प्रदायिक मतभेद प्रचलित हैं, और उस विषयपर जो वादग्रन्थ लिखे गये हैं, उनके अध्ययन और मनन से सुरसरस्वती के सेवकों को एक प्रकार का विशेष आनन्दानुभव होता है। इन वाद ग्रंथों से जो आनन्द संस्कृत साहित्य के अनन्य सेवकों को प्राप्त होता है, वह इतर भाषा के विद्वानों को प्राप्त होना कठिन है। वाणी के विलास से एक प्रकार का अद्भुत आनन्द प्राप्त हुआ करता है। और वैसी उपासनाविषयक मतभेदों से पूर्ण वादसामग्री रामानुज मध्वादि एवं शैवशाक्तादि सम्प्रदायों में प्रचुरप्रमाण में प्राप्त होती है। परन्तु ऐसे वादग्रंथो से वास्तविक सिद्धान्त प्रकट नहीं होने पाता, और फलतः तत्तत्सम्प्रदायों में पारम्परिक कलह प्रारम्भ हो जाता है। विद्वानों के अतिरिक्त वास्तविक बात कोई समझ नहीं पाता है, और अल्पज्ञ अनुयायी गण उन ग्रन्थों का अनुचित लाभ उठाते हैं। फलतः एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय से युद्ध

ठान देता है। विक्रमकी अट्ठारहवी शताब्दी में भी एक ऐसी ही घटना हो गई है। रामानुज और मध्वसम्प्रदाय पर, अथवा यों कहिये कि अपने मामा (तातार्य) के ऊपर ही आक्रमण करने के अभिप्राय से अट्ठारहवी शताब्दी के एक दिग्गज पण्डित अप्पय्यदीक्षित ने प्रयत्न किया था। वास्तविक रूप से यदि देखा जाय तो अप्पय्यदीक्षित ने वैष्णवों को चिढाने के उद्देश्यसे ही **''शिवतत्त्वविवेक''** नामका एक ग्रन्थ लिखा था। परन्तु उस ग्रन्थ के द्वारा अपसिद्धान्तों का प्रचार करने का घृणित कार्य उनके अनुयायियों ने किया था। दशदिगन्तविजयी श्रीमत्पुरुषोत्तमजी महाराजने इस ग्रन्थ के खण्डन में ''प्रहस्तवाद'' लिखना आवश्यक समझा, और उस के द्वारा आस्तिक संसार को भयङ्कर अधःपात से बचाया है।

श्रीमत्पुरुषोत्तमजीमहाराज
जन्म और वंशपरिचय

शुद्धाद्वैत अखण्डब्रह्मवाद के संस्थापक अखण्डभूमण्डलाचार्यचक्रवर्ति-श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के द्वितीय पुत्र गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी के पवित्र वंश में आपका प्राकट्य संवत् १७२४ के भाद्रपद शुक्ल एकादशी के दिन श्री गोकुल में हुआ था। आपका वंशपरिचय इस प्रकार है :-

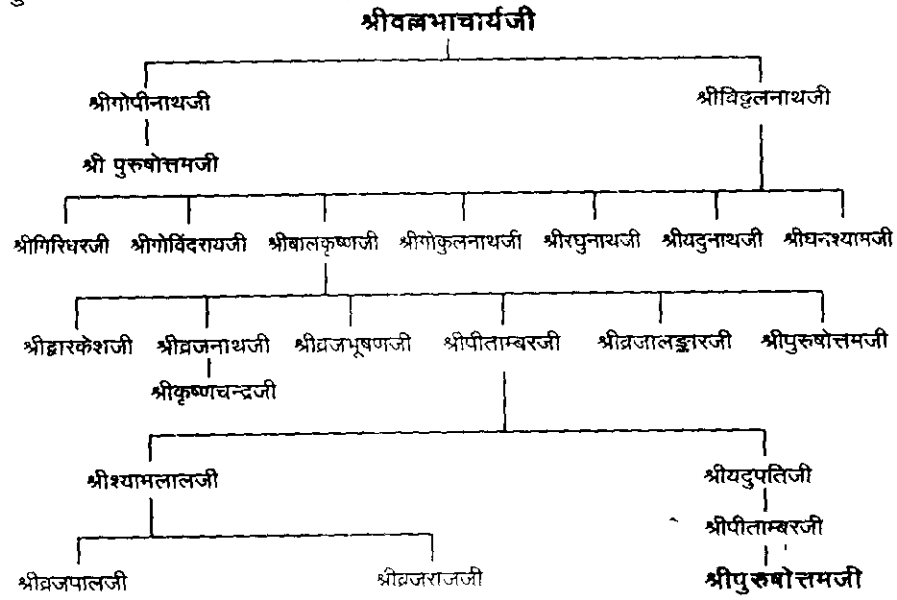

आपके पितृचरण श्रीपीताम्बरजी, और ब्रह्मसम्बन्ध करानेवाले गुरु श्रीकृष्णचन्द्रजी थे। श्रीव्रजराजजी आपके पितृव्य थे। श्रीव्रजराजजीने सुरतमें श्रीबालकृष्णजी का मन्दिर बनवाया था। आपहीकी कृपासे श्रीपुरुषोत्तमजी को श्रीबालकृष्णजीकी सेवा प्राप्त हुई थी।

उपर्युक्त इतिहास को आप ही ने श्रीमदणुभाष्यकी प्रकाशटीका में इस प्रकार अङ्कित किया है :-

तत्पुत्रान् सहसूनुभिर्निजगुरुन् श्रीकृष्णचन्द्राह्वयान्
भक्त्या नौमि पितामहं यदुपतिं तातं च पीताम्बरम् ।
वन्दे श्रीव्रजराजमन्वयमणिं यद्रोचिषा मादृशो-
प्यासीन्मूर्ध्नि कृपापरः प्रभुवरः श्रीबालकृष्णः स्वयम् ॥

विद्याभ्यास और ग्रन्थप्रणयन

श्रीमत्पुरुषोत्तमजी महाराज के अगाधपाण्डित्य के सम्बन्धमें निम्नलिखित आख्यायिका सम्प्रदाय में प्रचलित है :-

श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज सात वर्ष के बालक थे उस समय सूरत में अप्पय्यदीक्षित आये थे और उन्होंने शुद्धाद्वैतमतानुयायी वैष्णवों को शैवमत का उपदेश करना प्रारम्भ किया, और साथ ही यह भी कहा कि शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के अनुयायी आचार्यो को चाहिये कि वे शास्त्रार्थ करें। महाराजश्री बालक थे, आपके मातृचरण ने कह दिया कि तीन दिनके पश्चात् मेरे लालजी (श्रीपुरुषोत्तमजी) शास्त्रार्थ करेंगे। तदनुसार अपने बालक को शास्त्रार्थ के लिये सज्ज होने की आज्ञा दी। मातृचरण की आज्ञा पाकर श्रीपुरुषोत्तमजी ने तहखाने में - एकान्त में श्रीबालकृष्णजी के समीप तीन दिन तक श्रीसर्वोत्तमस्तोत्र का अखण्ड जप किया। (कोई कहता है कि त्रिविधनामावली का जप किया।) तीसरे दिन श्रीबालकृष्णजी और श्रीमहाप्रभुजीने स्वयं प्रगट होकर विद्यादान दिया। इस किंवदन्ती के समर्थन में भाष्यप्रकाश के समाप्ति के श्लोक उद्धृत किये जाते हैं। इस जनश्रुति में आंशिक सत्य तो है ही। श्रीपुरुषोत्तमजी के समय में साम्प्रदायिक ग्रन्थों का पठन पाठन निवृत्त हो चुका था। यह बात भी भाष्यप्रकाश के अन्तिम श्लोकों से ज्ञात होती है। वे श्लोक इस प्रकार है:-

क्रीडन् श्रीबालकृष्णः परमकरुणया मन्मनः प्रेरयित्वा
भाष्यार्थं योतिगूढं प्रकटितमकरोत् सम्प्रदाये निवृत्ते ।

तं नित्याकुण्ठशक्तिं वृतनिखिलनिजाज्ञानसंसारहारं
स्मृत्वा स्मृत्वोपकारं प्रमुदितमुदितः स्वप्रभुं सन्नमामि ॥
मायावादादिवादैर्व्यवहितमिव तं ब्रह्मवादं प्रकाश्य
श्रीमत्कृष्णाज्ञया तद्रतिपथ उदितो दैवजीवावनार्थम् ।
यैस्तान्कृष्णरूपान् प्रथितगुणगणान् श्रीमदाचार्यवर्यान्
ध्यायंध्यायं नमामि स्वहितमवहितस्तत्कृपादृष्टिवृष्ट्या ॥

इससे ज्ञात होता है कि श्रीपुरुषोत्तमजी को अगाध पाण्डित्य श्रीबालकृष्णजी और श्रीमदाचार्यजीकी कृपासे ही प्राप्त हुआ है।

परन्तु श्रीपुरुषोत्तमजी स्वयं प्रहरतवाद के मङ्गलाचरण में अपने विद्याध्ययन का परिमाण इस प्रकार बताते है :-

''संवीक्ष्योपनिषच्छ्रुतिस्मृतिगणं भाष्याणि सूत्राण्यपि
प्रस्थानैर्विविधैर्युतान्यथ मया वादावली तन्यते ।''

इस पद्यकी टीका में आप ही इस प्रकार लिखते है-

''मार्गप्रवर्तकान् गुर्वादीन् नमस्कुर्वन् लोकदृष्ट्यापि स्वस्य ज्ञानप्रकारस्य बोधनपूर्वकं ग्रन्थकरणं प्रतिजानते तत्पुत्रानिति। भाष्याणीति, उपनिषदादीनाम्। सूत्राणीति, वैय्यासानि जैमिनीयानि च।''

इससे ज्ञात होता है कि आपने मौज शौक में समय नष्ट न कर के उपनिषदों के भाष्य, व्याससूत्रों के यावत्प्राप्य भाष्य एवं पूर्वमीमांसा का भली प्रकार अध्ययन किया था।

श्रीमत्पुरुषोत्तमजी महाराज पर दो गोस्वामियों का उपकार हुआ है, एक श्रीव्रजराजजी और दूसरे श्रीकृष्णचन्द्रजी। श्रीव्रजराजजी की कृपा से आप को श्रीबालकृष्णजी का स्वरूप प्राप्त हुआ था। और श्रीकृष्णचन्द्रजी से आप को स्वसम्प्रदाय का यथार्थज्ञान प्राप्त हुआ था। श्रीपुरुषोत्तमजी ने अपने पितृचरण के नाम से और अपने पितामह के नाम से भी ग्रन्थरचना की है। गोलोकवासी तेलीवाला का मत है कि व्याससूत्रों पर ''भावप्रकाशिका'' वृत्तिकी रचना भी श्रीकृष्णचन्द्रजी के नामसे श्रीपुरुषोत्तमजी ने की है। वास्तविकरूप से विचार करने से तेलीवाला का मत यथार्थ प्रतीत होता है। जो लेखन शैली और तुलनात्मक विचार पद्धति भाष्यप्रकाश में है वही ''भावप्रकाशिका'' वृत्तिमें भी दृष्टिपथ होती है। किं बहुना भावप्रकाशिका में भाष्यप्रकाश की पंक्तियाँ ज्योंकी त्यों अनेक स्थानों में दृष्टिपथ होती है।

श्रीपुरुषोत्तमजी ने नवलक्ष श्लोकों का साहित्य सम्प्रदाय में लिखा है। आपके ग्रन्थ इस समय जो उपलब्ध होते हैं उन में से कुछ के नाम इस प्रकार हैं:-

भाष्यप्रकाश	वस्त्रसेवावाद
सुवर्णसूत्र	भेदाभेदवाद
आवरणभङ्ग	अभाववाद
सुबोधिनीप्रकाश	आत्मवाद
प्रस्थानरत्नाकर	स्ववृत्तिवाद
षोडशग्रन्थोंकी टीकाएँ	जयश्रीकृष्णोद्धारणवाद
प्रहस्तवाद	उत्सवप्रतान
पण्डितकरभिन्दिपालवाद	द्रव्यशुद्धि
सृष्टिभेदवाद	भक्तिहंसविवृति
आविर्भावतिरोभाववाद	भक्तिहेतुनिर्णयविवृति
ख्यातिवाद	पूर्वमीमांसाभाष्यविवरण
प्रतिबिम्बवाद	न्यासादेशविवृति
अन्धकारवाद	गायत्रीकारिकाविवृति
ब्राह्मणत्वादिदेवतावाद	वल्लभाष्टकविवरण
जीवव्यापकत्वखण्डनवाद	कैवल्योपनिषद्दीपिका
जीवप्रतिबिम्बत्वखण्डनवाद	ब्रह्मोपनिषद्दीपिका
ऊर्ध्वपुण्ड्रनिर्णयवाद	नृसिंहतापिन्युपनिषद्दीपिका
तुलसीमालाधारणवाद	छान्दोग्यदीपिका
शङ्खचक्रधारणवाद	श्वेताश्वतरदीपिका
मूर्तिपूजनवाद	उपनिषदर्थसङ्ग्रह
भागवतशङ्कानिरासवाद	द्वात्रिंशदपराधक्षमापनटीका
उपदेशशङ्कानिरासवाद	अधिकरणमाला
भक्त्युत्कर्षवाद	भावप्रकाशिका वृत्ति.

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त अनेक वाद ग्रन्थ तथा उपनिषदों के भाष्य सुने जाते हैं, पर वे अद्यावधि प्राप्त नहीं हुये हैं। सम्भव है संशोधन करनेपर प्राप्त हो।

पूर्वमीमांसा द्वितीयाध्याय के प्रथमं भावार्थपाद भाष्यका विवरण अपने पितामह श्री यदुनाथजी के नाम से निर्माण किया है। पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेदकी टीका और निबन्धशास्त्रार्थ प्रकरण का आवरणभङ्ग पितृचरण श्रीपीताम्बरजी के

नाम से प्रसिद्ध किया गया है। और भावप्रकाशिका वृत्ति निजगुरु श्रीकृष्णचन्द्रजी के नाम से प्रसिद्ध की गई है।

साम्प्रदायिक साहित्य को देखने से ज्ञात होता है कि श्रीगुसांईजी का कृष्णदास अधिकारी से झगडा हो जाने के पश्चात् श्रीगोपीनाथजी के बहुजी अपने बालक श्रीपुरुषोत्तमजी को साथ लेकर साम्प्रदायिक ग्रन्थो के साथ दक्षिण की ओर चली गईं और तब से श्रीगुसाँईजी और उनके वंशज ही गादी के वारस बनाये गये। अर्थात् पुष्टिमार्ग में श्रीगोपीनाथजी नामशेष हैं, उनका सम्प्रदाय में कोई विशेषस्थान नहीं है। किसी भी ग्रन्थकार ने श्रीमहाप्रभुजी और श्रीगुसांईजी के साथ श्रीगोपीनाथजी को प्रणाम नहीं किया है। परंतु श्रीपुरुषोत्तमजी ने श्रीगोपीनाथजी को प्रणाम किया है। किं बहुना मङ्गलाचरण में ''तेजोराशि'' और ''दयार्णव'' विशेषणों का प्रयोग करके श्रीगोपीनाथजी का विरुद्ध धर्माश्रयत्व भी दर्शाया है। श्रीगोपीनाथजी श्रीगुसांईजी के ज्येष्ट बन्धु हैं, इसलिये श्रीगुसांईजी से पूर्व श्रीगोपीनाथजी को नमस्कार किया गया है।

लेखन शैली

प्रियभाई वसन्तरामशास्त्रीजी और गोलोकवासी मूलचन्द्रभाई की कृपासे श्रीपुरुषोत्तमजी के हस्ताक्षरों में प्रहस्तवाद, श्रीसुबोधिनीकारिका, भाष्यप्रकाशादि अनेक ग्रन्थों को देखनेका सौभाग्य इस लेख के लेखक को प्राप्त हुआ है। जिस शैली से श्रीपुरुषोत्तमजी लिखते है वह शैली अत्यन्त प्रामाणिक है। तुलनात्मक लेखन पद्धति जो आज हम पाश्चात्य विद्वानों में देखते है वैसी ही- किंबहुना उससे भी अतिसूक्ष्म तुलना श्रीपुरुषोत्तमजी ने ईसाकी सत्रहवीं शताब्दि में ही अख्तियार की थी। संस्कृत साहित्य में इस ढंग से लिखा हुआ एक भी ग्रन्थ दृष्टिपथ नहीं हुआ है।

विरामचिह्नों के लिये कहा जाता है कि अंग्रेजीका प्रचार होने से पूर्व भारतवर्ष के लेखकों को विरामचिह्नों से परिचय नहीं था। परन्तु श्रीपुरुषोत्तमजी विरामचिह्नों का यथेष्ट उपयोग करते हैं। जहाँ अल्पविराम की आवश्यक्ता होती थी वहाँ आप एक विन्दु (·) से चिह्न करते हैं। जहाँ पूर्णविराम की जरूरत पडती है, वहाँ एक खडी रेखा (।) का चिह्न करते हैं। और जहां पेरेग्राफ छोडना हो वहाँ दो खडी रेखा (॥) करके एक इंच स्थान छोड देते हैं। जहाँ कोई अक्षर केपिटल करना हो वहाँ उस अक्षरपर गेरू लगाते हैं। यदि कोई अक्षर काटना है तो उसपर हरताल

पोत देते हं अथवा उस भाग पर पट्टी लगाते हैं। यदि कुछ संशोधन या टिप्पणी लिखनी हो तो जिस पंक्ति पर टिप्पणी लिखी गई हो, उस शब्द के ऊपर दो आडी रेखाएँ (=) करते हैं और मार्जिन में टिप्पणी लिखकर उस पंक्ति की संख्या उसके साथ लिखते हैं, अर्थात् यदि ऊपर की तरफ कोई टिप्पणी लिखी गई हों तो ऊपर से गिनने पर जिस के ऊपर टिप्पणी लिखी गई है, वह शब्द जिस पंक्ति में होगा उसका अंक लिखा जायेगा। और नीचे की मार्जिन में लिखा गया होगा तो नीचे से पंक्तियाँ गिनी जायेगी। आप भाषाशास्त्र के भी विशेषज्ञ थे। खास कर श्रीमहाप्रभुजी, श्रीगुसांईजी, श्रीगोकुलनाथजी, श्रीहरिरायजी, आदि की भाषा तुरन्त पहिचान लेते हैं।

श्रीमदाचार्यचरणों के प्रत्येक ग्रन्थ पर श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज की टीका विद्यमान है। साम्प्रदायिक विद्वानों का यह दृढ मन्तव्य है कि जो ग्रन्थ श्रीमदाचार्यचरणों के नाम से प्रसिद्ध है उस पर श्रीपुरुषोत्तमजी की टीका होनी आवश्यक है। जिस ग्रन्थ पर श्रीपुरुषोत्तमजी की टीका नहीं है उस ग्रन्थ को आचार्यचरणप्रणीत है ऐसा कहने में बहुत से पण्डित हिचकिचाते हैं। और यही कारण है कि ''भगवत्पीठिका'' नामक ग्रन्थ के प्रणेता आचार्यचरण हैं ऐसा मानने वाले पण्डितों की संख्या अधिक नहीं है। ''भगवत्पीठिका'' पर श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज की टीका उपलब्ध नहीं है। और न कहीं श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज अपने ग्रन्थ में उसको उद्धृत ही करते हैं। इसी कारण से उस के प्रणेता आचार्यचरणों के अतिरिक्त अन्य कोई होने चाहिये। सम्भव है कि किसी ने वह ग्रन्थ आचार्यचरणों के नाम से प्रसिद्ध किया हो। आपका लेखनव्यवसाय अधिक होने के कारण सम्प्रदाय में आप ''लेखवाले पुरुषोत्तमजी'' के नामसे प्रसिद्ध हैं।

श्रीपुरुषोत्तमजी सेवा में और भावना में अन्यगोस्वामी बालकों की अपेक्षा कुछ न्यून समय व्यतीत करते थे और सब गोस्वामियों में आप विशेष प्रतिभासम्पन्न एवं विद्वान् होने के कारण आप का सम्मान संप्रदाय में तथा सम्प्रदायेतर विद्वानों में विशेषरूप से होने के कारण आपके बन्धुवर्ग में आप के प्रति द्वेष भाव फैल जाने से आप को कुछ अल्पज्ञ एवं असहिष्णु लोग ''वेदपशु'' भी कहा करते थे। पर आप इन बातों पर कभी ध्यान ही नहीं देते थे। श्रीपुरुषोत्तमजी का नाम इतिहास के पत्रों पर सुवर्णाक्षरों से अङ्कित है, पर उनको वेदपशु कहनेवालों को संसारने अपने स्मृतिपटल से साफ कर दिया है।

दिग्विजय

आप के साथ प्रत्येक सम्प्रदाय के तथा प्रत्येक शास्त्र के विशेषज्ञ पण्डित हंमेशा रहा करते थे। आप भारत वर्ष में सब जगह स्वयं पधारकर तत्तत्प्रान्तो के तत्कालीन पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिये आह्वान करते थे। आप जब यात्रार्थ पधारते थे तब आपके साथ कई *गाडियाँ पुस्तकों की रहा करती थी। हम पहिले ही कह आये हैं कि आप भावना और वार्ता आदि में अपना समय अधिक नहीं खर्च करते थे और यही कारण है कि आपके अनुयायी शिष्यों में विशेषरूपसे भावुकता व्यक्त नहीं होती थी, अत एव श्रीगोकुलनाथजी और श्रीहरिरायजी आदि गोस्वामियों की बैठकें अनेक स्थानों में सुरक्षित हैं उसी तरह आप की कोई बैठक सुरक्षित नहीं है। और यही कारण है कि भावना के पण्डितों की दृष्टि में श्रीगोकुलनाथजी और श्रीहरिरायजी का स्थान श्रीपुरुषोत्तमजी से ऊंचा है। खेद है कि इस बीसवीं शताब्दि में भी इंग्रेजी पढेलिखे विद्वान् भी श्रीगोकुलनाथजी श्रीहरिरायजी के ग्रन्थों को श्रीपुरुषोत्तमजी के ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक मानने का दुराग्रह करते हैं। हमारा मत यह नहीं है कि श्रीगोकुलनाथादि के ग्रन्थ अप्रामाणिक हैं। पर श्रीपुरुषोत्तमजी को श्रीगोकुलनाथादिकी अपेक्षा अप्रामाणिक कहनेवालों का हम पूर्ण विरोध करते हैं। हमारा अनुरोध है कि जो लोग श्रीपुरुषोत्तमजी के ऊपर अपसिद्धान्तों के प्रचार का कलङ्क लगाते हैं वे सज्जन उन अपसिद्धान्तों की सूची प्रकाशित करें। मौखिक कोलाहल करने से अल्पज्ञता प्रगट होती है।

आपका शास्त्रार्थ काशी के प्रश्नोरानागर ब्राह्मण वेणीभट्ट ऊर्फ वेणीदत्त व्यास तर्कपञ्चानन भट्टाचार्य के साथ हुआ था। आपके जीवनचरित्र सुप्रसिद्ध साम्प्रदायिक मासिक पत्रिका ''पुष्टिभक्तिसुधा'' में गोलोकवासी मूलचन्द्र भाई का लेख छपा है उसमें कहा गया है कि सम्प्रदाय के मर्मज्ञ विद्वान् गोलोकवासी छगनलालशास्त्रीजी ने कहा था कि श्रीपुरुषोत्तमजी का शास्त्रार्थ काशीस्थ वेणीभट्ट के साथ हुआ था। परन्तु पीछे से सं. १९८२ में माधवबाग में श्रीपुरुषोत्तमजी के प्राकट्योत्सव के निमित्त जो सभा हुई थी और पुस्तक प्रदर्शनी खोली गई थी उस में व्याख्यान देते हुए मूलचन्द्र भाईने अपना मत बदल दिया था। आपने ''वेणुनाद'' में मुद्रित दानपत्रों के आधारपर यह निश्चय किया था कि सं. १७८७ में दान पत्र लिखा गया है और छगनलालशास्त्रीजी ने शास्त्रार्थ का संवत् १८२० बताया है, सं. १७८७ के

* कहा जाता है कि अड्ढाईस गाडी पुस्तकें आपके साथ रहती थीं। इसके अतिरिक्त ऊँट और घोडोंसे भी पुस्तकें ढोनेका काम लिया जाता था।

पश्चात् श्रीपुरुषोत्तमजी अधिक समय तक भूतलपर विद्यमान नहीं रहें होंगे ऐसा अनुमान करके मूलचन्द्र भाईने यह मत प्रसिद्ध किया था कि वेणीभट्ट के साथ शास्त्रार्थ नहीं हुआ होगा। इस विषय में मैं भी अपना अनुभव पाठकों के सम्मुख उपस्थित करना उचित समझता हूँ। वह इस प्रकार है:-

शुद्धाद्वैत वैष्णव वेल्लनाटीय महासभा का तृतीय अधिवेशन बम्बई में हुआ था। उस में श्रीमदाचार्यचरणों का शुद्धजीवनचरित्र तैयार करने और तत्सम्बन्धी ऐतिहासिक खोज करने के लिये कुछ द्रव्य (मुझे जहांतक स्मरण है २००० रुपिया) चि.गो. श्रीदामोदरलालजीने प्रदान किया था। अधिवेशन समाप्त होने के पश्चात् गोस्वामी श्रीवल्लभलालजी महाराजने अपने खास दफ्तर से एक आर्डर मेरे नाम जारी कर इस कार्य का गुरुतर भार मेरे शिरपर धर दिया; और नाममात्र के लिये व्यवस्थापक का स्थान उन्होंने अपने मामाजी को दिया। जिन का साम्प्रदायिक इतिहास के विषय में ज्ञान कुछ भी नहीं है। मैने महाराज से उस समय भी मूलचन्द्र भाई को इस कार्य के लिये नियुक्त करने का अनुरोध किया था। परन्तु दुर्भाग्य से फल विपरीत हुआ। मैंने सं १९८२ की विजया दशमी से कार्यारम्भ किया सो आजतक बराबर चल रहा है। महाराज से पृथक् होजाने पर भी मैंने खोज का कार्य छोडना उचित नहीं समझा। मैं महाराज से पृथक् हो जाने के पश्चात् काशी गया और वहाँ ''चना चबेना गंगजल जो पूरै करतार'' इस लोकोक्ति का अनुभव करता हुआ खोज का कार्य करता रहा। फलतः साम्प्रदायिक साहित्य का एक उत्तम इतिहास निर्माण कर सका हूँ। यदि भगवदिच्छा अनुकूल होगी तो शीघ्र ही वह छपकर प्रसिद्ध हो जायेगा। उसी खोज में श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज और वेणीभट्टका सम्बन्ध वादी प्रतिवादी का न था, पर गुरुशिष्य का था ऐसे प्रमाण एकत्रित कर सका हूँ।

जिस प्रकार गुर्जर देश में प्रसिद्ध साम्प्रदायिक पण्डित तुलजाराम भट्टजी आपके शिष्य है उसी प्रकार वेणीभट्ट भी आप के शिष्य ही हैं।

ये वेणीभट्ट काशी में कालभैरव के निकट ही घासीटोला में रहते थे। आप शुक्लयजुर्वेद के प्रसिद्ध भाष्यकार महीधर के वंशज हैं। आप का पूरा नाम वेणीदत्त व्यास तर्कपंचानन भट्टाचार्य है। आपने शुक्लयजुर्वेद की माध्यन्दिनीय शाखा का पूरा अध्ययन किया था। श्रौतकर्म में बडे निपुण थे। कई जगह सोमयाग में आपने आध्वर्य भी किया है। व्याकरण, वेदान्त और पूर्वमीमांसा का अध्ययन आपने पंचद्राविड पण्डितों के पास रहकर किया। नव्यन्याय में आपने विशेष योग्यता प्राप्त

की थी। नव्यन्याय बंगाली विद्वानों से पढे थे। आपने नादिया जाकर वहाँ के बंगालियों के साथ शास्त्रार्थ करके ''तर्कपञ्चानन भट्टाचार्य''की उपाधि भी प्राप्त की थी। यह उपाधि बंगदेशीय विद्वानों को ही प्राप्त होती थी। पर इन्हों ने अपनी विशेष योग्यता के कारण वह सम्मान प्राप्त किया था। वेणीदत्त व्यासने अनेक विषयों पर ग्रन्थ रचना की है। आपके ग्रन्थों का विषय प्रायः नव्यन्याय हुआ करता था। वेदान्त और पूर्वमीमांसा के विषय में भी आपने ग्रन्थ लिखे हैं, पर वे भी नव्यन्याय की शैली से ही लिखे गये हैं। ज्ञात होता है कि वेदान्त और पूर्वमीमांसा के ग्रन्थ आपने श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज के समागम के अनन्तर लिखे हैं। ये पहिले से ही राधाकृष्ण के उपासक थे। पर श्रीपुरुषोत्तमजी का समागम होने के पश्चात् श्रीगोवर्धननाथजी का अनन्य भजन करने लगे थे। आप श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज की यात्रा में साथ रहते थे। आपके लेखों को देखने से ज्ञात हो जाता है कि ये पहले किसी अन्य सम्प्रदाय के वैष्णव होंगे, और जब श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज का समागम हुआ तब पुष्टिमार्गीय वैष्णव हुए होंगे। श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज की आज्ञा लेकर काशी चले आने के पश्चात् आप का श्रीपुरुषोत्तमजी के साथ पत्र व्यवहार हुआ है। उसमें वेणीदत्तजी श्रीपुरुषोत्तमजी के लिये ''श्रीज्ञानावताराणां गुरुवर श्रीपुरुषोत्तमगोस्वामिनां चरणेषु वेणीदत्तस्य कोटिशः प्रणतयः'' लिखते हैं।

वेणीदत्तजीकी कन्या का विवाह हुआ उस समय श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज ने अपने अधिकारी को काशी भेजा था और उस के साथ एक आज्ञापत्र काशीस्थ वैष्णवों के नाम लिखा था। उस में लिखा गया है कि ''ये वेणीदत्तजी साम्प्रदायिक विद्वान् हैं, हमारे कृपापात्र हैं, इसलिये इनकी कन्या के विवाह में सब वैष्णवोंको मिलकर सहायता प्रदान करनी चाहिये।'' इस से ज्ञात होता है कि वेणीदत्तजी का श्रीपुरुषोत्तमजी के साथ गुरुशिष्य भाव था। वेणीदत्तजी की अन्य गोस्वामी बालकों के साथ भी घनिष्टता थी। कई गोस्वामी बालकोंने आप को साम्प्रदायिक पुस्तकें प्रदान की हैं। श्रीपुरुषोत्तमजीके हस्ताक्षरों से संशोधित पण्डितकरभिन्दिपालवाद, प्रहस्तवाद, सुवर्णसूत्र और प्रस्थानरत्नाकर का प्रमाणपरिच्छेद, इन पंक्तियों के लेखक को देखने का सौभाग्य काशी में प्राप्त हुआ है। ये सब पुस्तकें काशी के सरस्वती भवन में सुरक्षित हैं। ऊपर जिन पत्रों के विषय में कहा गया है, वे पत्र भी सरस्वती भवन के पुस्तकाध्यक्ष श्रीयुत् नारायणशास्त्रीजी खिस्ते की कृपा से देख सका हूँ।

गत आश्विन मास में मैं गोस्वामी श्रीरणछोडलालजी महाराज के साथ पञ्जाब और सीमाप्रान्त की तरफ गया था। तब वहाँ से लौटते समय लाहौरके ''दयानन्द

एंग्लो वैदिक कालेज'' के रीसर्च स्कालर पं. भगवदत्तजी से मिला था। ज्ञात हुआ कि दयानन्द कालेज में साम्प्रदायिक हस्तलेख भी विद्यमान हैं। चार दिन तक अमृतसर में रहा। वहाँसे मैं प्रतिदिन मोटर द्वारा लाहौर जाया करता था। वहां वेणीदत्तजी की पुस्तकें दृष्टिपथ हुई। भगवदिच्छासे पं. भगवद्दत्तजी के द्वारा आर. अनन्तकृष्णशास्त्रीजी और डॉ. मङ्गलदेवजी से परिचय हो गया। अनन्तकृष्णशास्त्रीजी पुरानी पुस्तकों की खोजकर पंजाब विश्वविद्यालय को अप्राप्य पुस्तकें प्रदान करते हैं, और डॉ. मङ्गलदेवजी सरस्वती भवन में ही कार्य करते है। इन दोनों सज्जनोंने काशी आकर सूचित किया कि महीधर भाष्यकार का पुस्तकसंग्रह दो चार दिन पहले ही बेचा गया है और उसमें वल्लभ सम्प्रदाय की पुस्तकें अधिक संख्या में प्राप्त होती है। उस समय परीक्षाकाल निकट होने के कारण मैं सरस्वती भवन तक जाने में असमर्थ रहा। परीक्षा के पश्चात् १५ दिन तक मैंने उस पुस्तक संग्रह से लाभ उठाया है। अभी वह बृहत् पुस्तकसंग्रह अव्यवस्थित रूप में पडा है। सम्भव है कि ग्रीष्मावकाश के पश्चात् उस की सूची तैयार हो जायेगी।

सूरत में शास्त्रार्थ

गुर्जरदेश में भास्कररराय नामक एक शाक्त पण्डित हुआ है। यह सूरत में भी कुछ दिन तक रहा था। इसकी आद्य दीक्षा और पूर्णाभिषेक सूरत में ही हुए थे। श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज के ऊपर इसका बहुत कटाक्ष था। इसने शाक्तमत के ३६ ग्रन्थ रचे हैं। उनमें से कुछ ग्रन्थ काशी में महाराष्ट्रीय पण्डित श्रीयुत् 'बाबू दीक्षित जडे' के पुस्तक संग्रह में विद्यमान है। इन पुस्तकों के साथ कुछ पत्रादि भी हैं। उन पत्रों में भास्कररायने श्रीपुरुषोत्तमजी को गाली दी है। इससे ज्ञात होता है कि शास्त्रार्थ में पराजित होने के कारण यह तामसदेवता के उपासक सिद्धजी (?) क्रुद्ध होकर अंट संट बकने लगे होंगे। श्रीपुरुषोत्तमजी के ग्रन्थों में भी तान्त्रिकों का खण्डन दृष्टिपथ होता है।

समानकालिक पण्डित

श्रीमहाप्रभुजी का जीवन चरित्र लिखने के अभिप्राय से तत्कालीन पंडितों की सूची तैयार की गई थी। उस समय अनायास ही श्रीहरिरायजी और श्रीपुरुषोत्तमजी के समानकालिक पण्डितों की भी सूची तैयार हो गई। आपके समय में भारतवर्ष में यवनों का उपद्रव अधिक होने पर भी ५०० से अधिक ग्रन्थकार भारतवर्षमें हुए हैं। पण्डितों की सूची तैयार करने में कितना परिश्रम हुआ

होगा और किन कठिनाइयों का सामना करना पडा होगा यह बात विद्वज्जन ही समझ सकते हैं। यहाँ सब पण्डितों के नाम अङ्कित करने या उनकी रचनाओं के विषय में कुछ कहने का पर्याप्तस्थान न होने के कारण न्याय, व्याकरण, मीमांसा और वेदान्तके विशेषज्ञ पण्डित जो कि श्रीपुरुषोत्तमजी के समय काशी में विद्यमान थे उन के नाम अङ्कित करना ही पर्याप्त समझता हूँ। इस नामावली से ही विद्वज्जन समझ सकेंगे कि उस समय श्रुपुरुषोत्तमजीने कैसे केसे अपूर्व पण्डितों का सामना किया होगा। ये नामावली History of Indian Logic और भिन्न भिन्न ग्रन्थों की भूमिकाएं और धर्मशास्त्रके निर्णयपत्रों पर से एकत्रित की गई हैं।

पूर्णेन्द्र सरस्वती यतिः	व्यासेन्द्रः
भट्ट नीलकण्ठ (ये अप्पय्यदीक्षितके भाई थे)	चक्रपाणी शेषः
आडबा शुक्लः	गोविन्द भट्ट काले
रघुदेव भट्टाचार्यः	गोविन्द भट्ट दशपुत्रे
मौनी गोपीभट्टः	विनायक शुक्लः
ब्रह्मेन्द्रसरस्वती यतिः	गोविन्दभट्टाचार्यः
वीरेश्वर शुक्लः	साम्राज्यपण्डितः
गागा भट्ट	अनन्तदेवः
अप्पय्यदीक्षित	जगन्नाथ पण्डितराज
कविमण्डन बालकृष्ण भट्ट	चिन्तामणि भट्ट द्रोणः
खण्डदेव	अनन्तभट्ट मीमांसक
वीरेश्वर शुक्लः	
लक्ष्मण पण्डित वैद्य	माधवदेवः
रामरामभट्टाचार्यः	रामहृदय गोमाजी भट्ट
काशीभट्ट सोमयाजी	लक्ष्मण सोमयाजी
गणेशदीक्षित	बापूदीक्षित
पौराणिक गदाधर	जयराम पंचानन
वाछा भट्ट	वीनदीक्षित
नमूनभट्ट	महादेव भारद्वाजः
भास्कर ज्योतिर्विद्	गौतमभट्टः

ये सब पं० वेणीदत्तजी के समय में काशी में विद्यमान थे। इसी प्रकार मधुसूदन सरस्वती तातार्य और नारायण भट्ट मीमांसक जैसे धुरंधर पण्डित

श्रीपुरुषोत्तमजी के पक्षपाती भी मौजूद थे । मेरे पास जो नामावली तैयार है उस में बहुत से पण्डित श्रीपुरुषोत्तमजी के समय वृद्ध हो चुके थे उनके भी नाम सङ्गृहीत है ।

श्रीपुरुषोत्तमजीका स्थान

भारत के मुख्य पण्डितों में श्रीपुरुषोत्तमजी का स्थान बहुत ऊंचा है । इसाकी उन्नीसवी शताब्दि के भारतवर्ष के अद्वितीय पण्डित भारतमार्तण्ड पण्डित गट्टूलालाजी आप की तुलना हेमचन्द्र द्रौण सायणमाधव के साथ करते थे ।

''भारतीय दर्शन शास्त्रों का इतिहास'' (हिन्द तत्त्वज्ञाननो इतिहास) नामक गुर्जर भाषा के ग्रन्थ में श्रीयुत नर्मदाशङ्कर देवशङ्कर महेता आप के चित्रपर से आपकी बुद्धिमत्ताका अनुमान इस प्रकार करते है: – ''श्रीमद्वल्लभाचार्यजी से सप्तम आचार्य श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज के ग्रन्थों को देखने से मुझे ज्ञात होता है कि इ.स. १६८८ में इस महापुरुष ने तत्त्वदर्शन में बहुत सूक्ष्म विचार किया है । उन की आकृति का चित्र ''प्रस्थानरत्नाकर'' के मुखपृष्ठ पर दिया गया है । उसके प्रति दृष्टिपात करने से ही ज्ञान होता है कि उनका भव्य ललाट सूक्ष्मविचारोंकी छाया से युक्त है; उन के विशालनेत्र प्रतिवादी के आक्षेपों को दृढ मन से स्वीकार करता है; उनकी तीक्ष्ण अग्रयुक्त नासिका आक्षेपों को सूक्ष्मरीति से उडा देने की शक्ति दर्शाती है; उनकी सुन्दर चिबुक उनकी अपूर्व दृढता और निश्चयबल को बताती है, और उनकी हाथकी ज्ञानमुद्रा व्याख्यान कौशल स्पष्ट दर्शाती है'' ।

सरल जीवन

श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज के जीवन में अत्यन्त सरलता थी । यद्यपि आपको आधुनिक सजातियों एवं अन्यान्य धर्माचार्यों की तरह सुख के सब साधन सुलभ थे । आपका प्रभाव राजामहाराजाओं पर भी पर्याप्त था । तथापि आप एक क्षण भी मौजशोक में नहीं बिताते थे । आधुनिक समय में जैसे धर्माचार्यों को एवं वैष्णवों को पाश्चात्य वेशभूषा रुचिकर है, वस्त्र भी पाश्चात्य ढंग के ही पहिनते हैं, बोलचाल में भी पाश्चात्यभाषा का प्रयोग करते हैं, उसी तरह उस जमाने में भी लोग करते थे । यह यावन वेशाभाषादि श्रीपुरुषोत्तमजी को असह्य लगता था । आप निबन्ध के आवरण भङ्ग में लिखते हैं कि ''एतेन मूर्खा अनापद्यपि म्लेच्छादिवेशभाषादिकं रोचयन्ते स्वीकुर्वन्ति च तेऽपि तथेति बोधितम्'' ।

परिवार और गोलोकप्रदेश

श्रीपुरुषोत्तमजी का विवाह कहाँ और कब हुआ सो ज्ञात नहीं है । परन्तु इन के यहाँ जो पुत्रों का जन्म हुआ था, वे इनकी अवस्था में अथवा इनके अनन्तर शीघ्र ही गोलोकप्रविष्ट हुए । तब से आप की गादी पर द्वितीय पीठके वंशज गोस्वामी आये थे । उन्हीं के वंशज इस समय सूरत की गद्दीपर बिराजमान विद्वद्रत्न गोस्वामी श्रीव्रजरत्नलालजी महाराज हैं । आप ही इस समय पूर्वोक्त श्रीबालकृष्णजी की सेवा करते हैं ।

दिग्विजय के अनन्तर श्रीपुरुषोत्तमजी ने अपना नित्यनिवास सूरत में किया । सूरत में ही बिराजमान होकर श्रीबालकृष्णप्रभु की स्वरूपसेवा और नामसेवा की ।

स्वरूपसेवा करके प्रभुके विप्रयोगरसका अनुभव किया और नित्यसंयोगरस का अनुभव करनेके लिये विक्रम के संवत् १८२० के अनन्तर अपनी जन्मभूमि गोकुल में ही नित्यलीलाप्रवेश किया ।

श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज के प्रतियोगी

यहाँ यह भी बता देना अप्रासङ्गिक न होगा कि श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज के प्रतियोगी पण्डित उस समय भारत के अनेक दिग्गज पण्डित विद्यमान थे । यों तो आप के विरोधी पण्डित बहुत थे, पर विशेष रूपसे उल्लेख करने योग्य सूरत में ही शाक्त पण्डित भास्कररराय और शैव पण्डित अप्पय्यदीक्षित थे । प्रस्तुत ग्रन्थ के साथ भास्कररराय का कोई सम्बन्ध न होने के कारण उनके विषय में चर्चा करना व्यर्थ है, पर अप्पय्यदीक्षित का परिचय आवश्यक है ।

अप्पय्यदीक्षित

श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज जैसे प्रतिभाशाली थे वैसे ही उनके प्रतिपक्षी का होना भी आवश्यक है । अप्पय्यदीक्षित भी अपने जमाने के पण्डितों में विशेष स्थान प्राप्त कर चुके थे । दीक्षितजी के अनुयायियों ने आपको शेष का और शङ्कर तक का अवतार मान लिया था । पर ये सब अन्धश्रद्धालुओं की अतिशयोक्तियाँ है । यद्यपि दीक्षितजी कट्टर शैव हैं और इन्होंने शैव भाष्यपर टीका भी लिखी है, तथापि वे शैव दर्शन में मानते न थे । पीछे से वे केवलाद्वैतवादी बन गये थे । उनका जन्म तो वैष्णव माता पिता के उदर से ही हुआ है । आप की पितामही भी वैष्णव की कन्या थी । आपके विषय में मद्रास प्रान्तीय विद्वानों में अनेक आख्यायिका

प्रचलित हैं । उसमें एक यह भी है- ''पितामही यस्य तु वैष्णवस्य कन्या, पिताश्वेतमृदूर्ध्वपुंड्री'' । इससे यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि दीक्षितजी के पिता और पितामही वैष्णव थे, अर्थात् वैष्णव माता पिता की सन्तान होकर भी आप शैव थे ।

जन्म और वंशपरिचय

कांजीवरम् के पास ''अडयप्पलम्'' नाम का एक छोटासा ग्राम है । वहाँ आचार्यदीक्षित नामक एक विद्वान् ब्राह्मण निवास करता था । वही आचार्यदीक्षित ''न्यायचिन्तामणि'' नामक ग्रन्थ के प्रणेता हैं । और वे ही वक्षःस्थलाचार्यदीक्षित नामसे भी प्रसिद्ध थे । इन की द्वितीय पत्नी वैष्णवकुलतिलक श्रीवैकुण्ठाचार्यवंश्य श्रीरङ्गराजाचार्यकी दुहिता तोतरम्बी थी । तोतरम्बी के साथ आचार्यदीक्षित का विवाह होने के पश्चात् विजयनगराधिपति श्रीकृष्णराज महाराज का आश्रय प्राप्त किया था ।

इसी वैष्णवकन्या तोतारम्बी से आप को चार पुत्रोंकी प्राप्ति हुई, जिस में सबसे बडेका नाम रङ्गराजाध्वरी प्रसिद्ध है । रङ्गराजाध्वरी ने अद्वैतविद्यामुकुरविवरण, अद्वैतदर्पणादि अनेक ग्रन्थों की रचना की थी । रङ्गराजाध्वरी के विषय में नलचरितनाटक में बहुत कुछ लिखा गया है । इन्हीं रङ्गराजाध्वरी के ज्येष्ठपुत्र का नाम अप्पय्यदीक्षित था ।

अप्पय्यदीक्षित जैसे प्रसिद्ध विद्वान् के समयनिर्णय के विषय में पण्डितों में बड़ा ही मतभेद प्रचलित है । भट्ट आत्माराम और जयन्तपण्डित आदिका मत है कि अप्पय्यदीक्षित ई. स. १५६४ के पूर्व हुए हैं । ब्रह्मविद्यापत्रिकाकार मानते हैं कि १५५० में अप्पय्यदीक्षित ७० वर्ष के थे । अर्थात् १४८० में जन्म होना चाहिये । पाश्चात्यविद्वान् कहते हैं कि १५२० के पूर्व अप्पय्यदीक्षित थे । महामहोपाध्याय गङ्गाधरशास्त्रीजी का मत भी ब्रह्मविद्यापत्रिकाकार के अनुसार ही है । इस विषयमें और भी कई प्रकार की किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं ।

एक मत ऐसा भी प्रचलित है कि एक बार विजयनगरके महाराज श्रीकृष्णराजको वेंकटाचल पर विश्वजिद्याग करने की इच्छा हुई । तब अप्पय्यदीक्षितने उन को यह याग काशी में जाकर करनेकी सलाह दी थी । और तदनुसार उन्होंने काशी जाकर विश्वजिद्याग किया था । उस याग में अप्पय्यदीक्षित भी संमिलित हुए थे । काशी में अप्पय्यदीक्षित का सिद्धान्तकौमुदीकार भट्टोजी दिक्षित के साथ

शास्त्रार्थ हुआ था । यह किंवदन्ती काशी के पण्डितों में प्रसिद्ध है ।

इसी विषय में मद्रास प्रान्त के पण्डितों का कथन है कि भट्टोजी दीक्षित सेतुबन्ध रामेश्वर के दर्शनार्थ जाते थे, रास्ते में कांची में ही अप्पय्यदीक्षित के साथ समागम हो गया था और कांची में ही कुछ दिन निवास करके दीक्षितजी से ही ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य पढे थे ।

किन्तु दाक्षिणात्योंका मत प्रमाणाभाव से मानने योग्य नहीं है । हम समझते हैं काशीस्थ पण्डितों का कथन आंशिक सत्य है । भट्टोजी दीक्षित अप्पय्य के समकालीन नहीं है । कृष्णराज ने काशी में विश्वजित् याग किया था और उसमें अप्पय्य का सम्मिलित होना भी निःसन्दिग्ध है । वहां भट्टोजी दीक्षित के साथ तो नहीं पर शेष वीरेश्वर के साथ शास्त्रार्थ हुआ था । और उसी समय इनका समागम पण्डितराज जगन्नाथ कवि के मीमांसागुरु खण्डदेव के साथ हुआ था । और यह भी सम्भव है कि उसी समय भट्टोजी दीक्षित का भी समागम हुआ हो पर यह वार्ता अधिक विश्वसनीय नहीं है । हम यह मानने के लिये तैयार हैं कि अप्पय्य और खण्डदेव का समागम हुआ था । और अप्पय्यने कुछ दिन काशी में निवास किया था और उसी समय अप्पय्यने खण्डदेव को ''विधिरसायन'' बताया होगा । भाट्टरसायन में लिखा है कि ''मीमांसकमूर्धन्येन विधिरसायनकृता'' इन शब्दोंसे ज्ञात होता है कि काशी में अप्पय्यने स्वयं विधिरसायन का प्रचार किया था ।

अप्पय्यदीक्षित काशी में आये थे और उनको खण्डदेव प्रभृति काशीस्थ पण्डितों के साथ समागम हुआ था, इस विषय में हमारे पास एक प्रमाण और भी विद्यमान है । इ.स. १६५७ में काशी के मुक्तिमण्डप में एक सभा हुई थी । उस में यह निर्णय किया गया था, कि ''महाराष्ट्रीय देवर्षि (देवरुखे) ब्राह्मण पंक्तिपावन हैं । इनके साथ एक पंक्ति में पञ्चद्राविड ब्राह्मण भोजन कर सकते हैं'' । इस निर्णय पत्र पर खण्डदेवादि के साथ ही अप्पय्यदीक्षित के भी हस्ताक्षर है । यह निर्णयपत्र श्रीयुत पिंपुटकर ने ''चितळे भट्ट प्रकरण'' नाम की पुस्तिका में मुद्रित कराया है । इस प्रमाण से सिद्ध होता है कि कम से कम इ.स. १६५७ में तो खण्डदेव और अप्पय्य काशी में मौजुद थे । काशी में विधिरसायन की रचना के अनन्तर दीक्षितजी आये थे । विधिरसायन जैसा प्रौढ़ दार्शनिक ग्रन्थ दीक्षितजी ने कम से कम ३० वर्ष की उम्र में बनाया होगा ।

पण्डितराज का और इनका समागम हुआ था यह भी निम्नलिखित बाल कवि के एक पद्य से ज्ञात होता है । वह पद्य इस प्रकार हैं :-

यद्धुं विश्वजिता परिघरं सर्वे बुधा निर्जिता
भट्टोजिप्रमुखास्स्त जगन्नाथोऽपि निस्तारितः ।
पूर्वार्धे, वरमे द्विसप्ततितमस्याब्दस्य सद्विश्वजि-
द्याजी यश्च चिदम्बरे स्वमभजज्ज्योतिः सतां पश्यताम् ।

इस पद्यसे तथा अन्यान्य और कई प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है कि पण्डिराज जगन्नाथ के साथ दीक्षितजी का समागम हुआ था। पण्डितराज १६५८ के अनन्तर काशी में थे। क्योंकि शहाजहाँ को औरंगजेबने १६५८ ई. में कारागार में बन्द किया था। अर्थात् शहाजहाँ के आश्रित पण्डितराज भी उसी समय काशी गये होंगे। अर्थात् ही १६५७ की सभा के अनन्तर इन दोनों पण्डितों का समागम काशी में होना सम्भव है।

ग्रन्थरचना और समकालीन पण्डित

अप्पय्यदीक्षितने पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा, साहित्यशास्त्र और शैवमतके अनेक ग्रन्थ निर्माण किये हैं।

इन के समकालीन पण्डित और कविगण निम्नलिखित हैं –

पं. आनन्दराममखी,	पण्डितराज जगन्नाथ
रत्नखरेदीक्षित	समरपुंगवदीक्षित
तातार्चार्य	नीलकण्ठदीक्षित
खण्डदेव	राजचूडामणि
भट्टोजीदीक्षित	वेंकटाध्वरी
शेषवीरेश्वर	सदाशिवब्रह्मेन्द्र इत्यादि

जीविका उपार्जन

अप्पय्यदीक्षित की जीविका क्या थी ? यह जानने का विशेष साधन हमारे पास विद्यमान नहीं है, तथापि इतना तो ज्ञात होता है कि विजयनगराधीश्वर कृष्णदेवराय के पुत्र नरसूभूपतिके पुत्र वेंकटपतिराय से इनको कुछ जीविका मिली होगी। वेंकटपतिराय ने ही विश्वजित् याग किया था। और उसी याग में दीक्षितजी उनके साथ काशी गये थे।

लोकापवाद

अप्पय्यदीक्षितका विवाह कहां और कब हुआ वह ज्ञात नहीं है। पर वेंकटेश्वर प्रेस में मुद्रित कुवलयानन्द की भूमिका देखनेसे ज्ञात होता है कि इनका

किसी विधवा से प्रेम हो गया था और इसी कारण ये जाति से बहिष्कृत किये गये थे। ये कहते थे कि यह मेरी पूर्वजन्म की पत्नी है। अन्त में ये घर छोडकर उसी पूर्वजन्म की पत्नी के साथ एक शिवालय में रहने लगे थे। कहा जाता है कि ७२ वर्ष की अवस्था में ये अपनी पूर्वजन्म की पत्नी के साथ उसी शिवलिङ्गमें समाविष्ट हो गये। इनका देहान्त चिदम्बरम् में हुआ था।

हमारी समझ से श्रीपुरुषोत्तमजी की युवावस्थामें ये ७० वर्ष के करीब होंगे।

प्रहस्तवाद

हम पूर्व ही कह चुके हैं कि श्रीपुरुषोत्तमजी ने प्रहस्तवाद अप्पय्यविरचित शिवतत्त्वविवेक के खण्डनार्थ बनाया है। ''प्रहस्त'' शब्द का अर्थ होता है ''तमाचा''। इस ग्रन्थ का नाम प्रहस्त रखने का एक कारण है। और वह यह है कि अप्पय्यने जानबूझ कर वैष्णवों के प्रति द्वेषभाव होने के कारण शिवतत्त्वविवेक में वैष्णवों की निन्दा की है। विवेकशून्य हो कर शिवतत्त्वविवेक लिखा गया है, इसी लिये ''प्रहस्त'' नामक वाद की प्रवृत्ति भी योग्य है। प्रहस्तवाद में शिवतत्त्वविवेक के प्रत्येक प्रकरण एवं श्लोकों तथा टीका में उपन्यस्त वाक्यों का शास्त्रीय दृष्टि से विचार किया गया है। खास वेदान्तदर्शन और मीमांसादर्शन के आधार पर ही शिवतत्त्वविवेक की परीक्षा की गई है।

शिवतत्त्वविवेक के ६४ श्लोक हैं। ये श्लोक ''शिखरिणी'' वृत्त में रचे गये हैं। इसलिये इसको शिखरिणीमाला भी कहते हैं। शिखरिणीमाला की टीका भी अप्पय्यदीक्षित ने लिखी है उसीका नाम शिवतत्त्वविवेक है।

शिवतत्त्वविवेक का सङ्क्षेप इस प्रकार है:–

श्लोक संख्या	प्रतिपाद्य विषय–
१	मङ्गलाचरण। शिव ही ध्येय है। विष्णु ध्येय नहीं है।
२	शिव ही परदेवता होने के कारण वही परमतत्त्व है। मूर्तित्रयातीत शिव है।
३	''यमादित्यो न वेद'' इत्यादि श्रुतिवाक्यों से सिद्ध होता है कि ब्रह्मादि देवताओंका भी परब्रह्म (अप्पय्य के मत से परम शिव) की स्तुति करने का अधिकार नहीं है।
४	वैष्णवोपासना अवैदिक है, जो शिवकी उपासना नहीं करते उनका जन्म निष्फल है।

५ पूर्व श्लोकमें वैष्णवों की निन्दा करके अब ''एष ह्येव साधु कर्म कारयति'' इत्यादि श्रुति शिवपरक है ऐसा कहा है।

६-७ पूर्वोक्त अर्थ का ही समर्थन किया गया है।

८ ''नायमात्मा प्रवचेन लभ्यः'' इस श्रुति में आत्मशब्द शिवपरक है।

९ शिवकी भक्ति से ही चारों पुरुषार्थ प्राप्त होते हैं।

१० दधीचि ऋषि के शाप से वैष्णवों की बुद्धि नष्ट हो गई है।

११ परंतु लोक में शिव की महिमा पर विश्वास नहीं है, प्रत्युत भगवान् नारायण पर विश्वास करते हैं और उसी का आराधन भी कराते हैं, इसलिये परिसङ्ख्या से शिवमहिमा पर विश्वास करने वाले अत्यन्त विरल होते हैं ऐसा प्रतिपादन किया गया है।

यहाँ उपोद्घातप्रकरण समाप्त होता है।

यहाँसे श्रुत्यर्थप्रकरणका प्रारम्भ है

१२ शिव ही संसार में सबसे अधिक है, यह सिद्ध करने के लिये आगे उसकी उपाधि और उपाधिप्रयुक्त गुणादिक बताने की इच्छासे शिव को ही उपाधिनिर्मुक्त सिद्ध किया है।

१३-१४ निरुपाधि ब्रह्म (शिव) भी लोकानुग्रह की इच्छा से कल्पित गुणों से युक्त हो जाता है। वह ब्रह्म माया की उपाधि से युक्त सर्वोत्तर और सगुण है।

(यहाँ ब्रह्म मायोपाधिवाला है ऐसा सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। युक्तियाँ वही है जो कि शांकर मत के लोग दिया करते हैं, कोई ऐसी युक्ति वा प्रमाण नहीं दिया गया जो अखण्डित हो)

१५-१७ श्रुतियों का बलाबलपरीक्षण.

१८ शिवका कारणत्वविचार

१९-२० कारणत्वप्रतिपादक सब श्रुतियाँ शिव में पर्यवसित होती हैं।

२१ सब उपनिषदें शिव का ही वर्णन करती हैं।

२२-२३ वेदोक्त पुरुषसूक्त में भी शिव का ही वर्णन है।

२४-२८ मान लिया जाय कि पुरुषसूक्त देवतान्तर पर है, तथापि सब वेद रुद्र पर ही हैं।

२९-३० शिव ही सर्वान्तर्यामी है।

३१-३५ नारायणानुवाक विष्णु पर है इस पूर्वपक्षका खण्डन। और सब श्रुतियों में शिव को ही परब्रह्म कहा है ऐसा प्रतिपादन।

यहाँ श्रुत्यर्थविचार समाप्त होता है
इस प्रकार पूर्वार्ध समाप्त हुआ।

उत्तरभाग

पूर्वभाग में कर्मकाण्ड (पूर्व काण्ड) और उपनिषद् (उत्तर काण्ड) का विचार किया गया है, अब उत्तर भाग में पुराणादि के वाक्योंका विचार है।

३६ पुराण सब शिव का ही वर्णन करते हैं।

३७ महाभारत शिव पर ही है।

३८ रामायण शिवका उत्कर्ष वर्णन करता है न कि विष्णु का।

३९ मनुस्मृत्यादि धर्मशास्त्र भी शिव का ही वर्णन करते हैं शिव का उत्कर्ष यही एक धर्म है।

४० ब्रह्मसूत्रों में शिव को ही ईशान शब्द से प्रमित कहा है। उमापति शिवजी ही परब्रह्म है ऐसा सुत्रकार के हृदयस्थित आशय है।

४१ जब ब्रह्मसूत्र ही शिवपर है तब ब्रह्मादिशब्दों शिववाचक क्यों न माने जाँये ? अर्थात् ब्रह्मादिशब्द भी शिव पर ही हैं।

४२ ''शिव'' कहने से निरतिशय ऐश्वर्ययुक्त शिवजी का बोध होता है।

४३-४४ सर्वाधिक पदार्थ ईशानशब्दवाच्य शिव के अतिरिक्त अन्य नहीं हैं।

४५ नारायण जगत्कारण है इस मत का खण्डन।

४६-४७ शिवपुराण और शैवागम को जो अप्रमाण कहते हैं उनके मतका निरास।

४८ विष्णु पर श्रुतियों का प्राबल्य निरास।

४९-५१ ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र इस त्रिमूर्ति में शिव का ही उत्कर्ष है।

५२-५५ गायत्री में भी शिवका ही वर्णन है।

५६ द्विजाति में ब्राह्मणों को शिवभजन ही करना आवश्यक है।

५७ क्षत्रियों को भी लिङ्गार्चन ही करना चाहिए।

५८ वैश्यों का आराध्यदेव शिव ही है। सामान्यतः सब कामनाओं की पूर्ति के लिये शिव का अर्चन करना उचित है।

५९ निःश्रेयसरूप अप्राकृत फल प्राप्त करना हो तो वह फल शिवाराधन के बिना प्राप्त नहीं हो सकता।

देता है, उन सब आकारों को समानरूपसे मानने में वा उन में न्यूनाधिक भावको मानने में कोई अन्तर नहीं है। समान मानेंगे तो भी वे मायिक है और न्यूनाधिक मानेंगे तो भी मायिक तो है ही, उसमें किसी प्रकार का विशेष नहीं हैं।

अन्य एक ऐसा भी मत प्रचलित है कि मायिक आकारों में विष्णु आदि उत्कृष्ट हैं।

कोई शिव के आकार को उत्कृष्ट मानते हैं।

भेदवादियों का मत है कि ब्रह्म के चैतन्यादि वे भेद ही ब्रह्म है, अन्य जीव हैं।

वस्तुतः ब्रह्म त्रिगुणातीत, माया का नियामक, उपनिषदों से सिद्ध होनेवाला, विरुद्धधर्माश्रय होने से स्वाभाविकतया सर्वाकार, कर्तृ, अकर्तृ है। अत एव भिन्न भिन्नवादों को अवसर प्राप्त नहीं है, न किसी प्रकार का ब्रह्म में दोष सिद्ध हो सकता है। परन्तु अन्धहस्तिन्याय से अनेक वादों से सिद्ध होने पर भी लीला से तत्स्वरूपों के उपासकों को तत्तत्फलदान करने के लिये उन उन रूपों में तारतम्य है। यह सिद्धान्त हुआ।

उपर्युक्त मतान्तरों में पूर्व परिच्छेद में उपाधिपक्ष का निरास कर देने से मायावाद का निरास हो जाता है। भेदवाद श्रुतिसम्मत न होने के कारण उस में प्रतिपादित केवल तारतम्य का ही विचार किया जाता है। उस में महामहिमशालि परब्रह्म है और उस से इतर विभूतिरूप है, अन्यरूप तो विभूति से भी न्यून है।

अब यह विचार किया जाता है कि वह जो महामहिमशालिस्वरूप कहाँ है ?

शिवतत्वविवेक के तेरहवें श्लोक में अप्पय्यदीक्षित कहते हैं कि:–ब्रह्मोपनिषद्, तापनीय श्रुतियाँ, मैत्रायणीयोपनिषद् तथा योगियाज्ञवल्क्य के वाक्य, श्रीभागवत, विष्णुपुराणादि में तथा अन्यत्र भी ऐसे अनेक वाक्य मिलते हैं, जो ब्रह्मा,विष्णु, शिवसे भी अतीत एक चतुर्थ तत्त्व का प्रतिपादन करते हैं, वही परमशिव है। वे सब वाक्य शिवजी में पर्यवसित होते हैं।

परन्तु ऐसा कहना विचारशीलता का द्योतक नहीं है। आप जिस तत्त्वको परब्रह्म मानते हैं और उसपर ब्रह्मवाचक वाक्यों को शिवमें पर्यवसित करतें हैं वह मानने योग्य नहीं है। क्योंकि आप का ब्रह्म माया की उपाधि से आच्छादित है। परब्रह्म सोपाधिक नहीं है। आप जिस को ब्रह्म कहते है वह सोपाधिक होनें के कारण उसकी महिमा के जितने वाक्य है वे सब के सब माया में पर्यवसित किये जाते हैं। यही आपकी विचारशून्यता का एक खासा प्रमाण है। मायोपाधिक ब्रह्म की महिमा वेदपुराणादि में नहीं है, किन्तु निर्व्याज परब्रह्म की ही महिमा का वर्णन वहाँ मिलता है।

आप मायावाद को मानकर सगुण ब्रह्म को जगत् का कारण मानते हैं। यह सिद्धान्त भी शास्त्रसम्मत नहीं है। क्योंकि शास्त्रों में निर्व्याज ब्रह्म को ही जगत्कारण कहा है। ''तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः'' इत्यादि सृष्टि का प्रतिपादन करनेवाले वाक्यों में निर्व्याज ब्रह्म ही कारण रूपसे परिगृहीत है। इस विषयपर विद्वन्मण्डनादि ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक विचार किया गया है, अतः यहाँ विचार नहीं किया।

शाङ्कर भाष्य में भी कहा है कि – ''विष्णोर्व्यापनशीलस्य ब्रह्मणः परमात्मनः, वासुदेवाख्यस्य प्रकृष्टं पदं स्थानं सत्त्वमित्येतत्पदमाप्नोति'' अर्थात् व्यापनशील जो सर्वत्र व्याप्त है वही परमात्मा परब्रह्म वासुदेव श्रीविष्णु का ही प्रकृष्ट–सर्वश्रेष्ठ स्थान सत्त्व है।

इसी प्रकार ''शास्त्रों में शिव, शम्भु, रुद्र, ईशान, महेश्वर इत्यादि शब्द मायोपाधि से युक्त परमशिव के ही वाचक हैं'' ऐसा शिवतत्त्वविवेक में कहा है। हम यहाँ यह बता देना चाहते हैं कि अप्पय्यदीक्षित को ऐसा कहने का प्रयोजन क्या है ? उनका प्रयोजन वराहपुराण के इस वाक्य से है। वराहपुराण में कहा है कि ''नारायणः शिवो विष्णुः शङ्करः परमेश्वरः। एतैस्तु नामभिर्ब्रह्म परं प्रोक्तं सनातनम् ॥'' इस श्लोक का नारायणशब्द शिववाचक है, विष्णुशब्द शङ्कर का वाचक है और यही परम ईश्वर यानी परम शिव है ऐसा अर्थ दीक्षितजी करते हैं। परन्तु उनका यह मन्तव्य दोषशून्य नहीं है। वे जो अर्थ करते हैं वह गौणी वृत्ति से होता है। जैसे पूर्वकाण्ड की श्रुतियों में स्तुतिरूप से कहा गया है कि ''यजमानः प्रस्तरः'' ''यजमानो वै पुरोडाशः'' इत्यादि वाक्यों में प्रस्तर का कार्य यजमान से लेने को नहीं कहा और न यजमान को पुरोडाश की तरह शृपण इत्यादि है। पर इन वाक्यों का अर्थ यह होता है कि जैसे प्रस्तर और पुरोडाश यज्ञसाधन हैं वैसे ही यजमान भी यज्ञ का साधन है। अतः यजमान गुणीभूत है। यहाँ यजमान की स्तुति यागसाधनत्वरूप से की गई है। इसी तरह ब्रह्म की भी साधक के विशेष के अनुग्रहादि साधन (गुण) से शिवादि शब्दों से स्तुति की गई है। अथवा यहाँ सारूप्यनिबन्धना भी मान सकते हैं। जैसे ''आदित्यो यूपः'' यूप आदित्य है। ''यजमानो यूपः'' यजमान यूप है। इत्यादि वैदिक वाक्यों में अग्ननजनित तेजस्वित्वऊर्ध्वत्वादिरूप से आदित्य और यजमान शब्द यूप में गौणवृत्तिक हैं, उसी तरह अनन्तरूप, परब्रह्म का जो शिवरूप से आकार है वही तुरीयरूप शिव का भी आकार है ऐसी निबन्धना होती है।

अमर कोश में ''शिवः शूली महेश्वरः, ईश्वरः सर्व ईशानः शङ्करश्चन्द्रशेखरः'' इत्यादि पर्यायवाचक शब्द कहे हैं। इस से सिद्ध होता है कि ईशानादि शब्द शिव में ही रूढ हैं, इन को आप कैसे परब्रह्म में रूढ मानते हैं ?

इस शङ्का का समाधान श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज इस प्रकार करते हैं-

वस्तुतः सर्व शब्द सर्वार्थ वाचक है ऐसा पातञ्जल महाभाष्य में कहा है। इसका मतलब यह है कि यावत् शब्द जो सब कुछ हो सकता है उसके वाचक हैं। जो सब कुछ हो सकता है वह परब्रह्म ही है। अर्थात् शिवादि शब्दों से भी परमात्माका ही बोध होता है। कोशकार ने इन शब्दों को शिवजी के अर्थ में रूढ माना है उसका कारण यह है कि कोशकार ने शक्तिसंकोच करके किसी नियत पदार्थ के पर्यायवाचक शब्द कहें हैं। वास्तविकरूप से सब शब्द परब्रह्म के वाचक ही हैं।

मीमांसक के मत से भी शब्दों की शक्ति धर्म ही में मानी है। धर्मवाचक भाव शब्द सत्ता और व्यापकत्व का बोध कराता है। अर्थात् घटादि शब्द सत् और व्यापक के धर्म में प्रवर्तमान होते हुए अपना व्यवहारक्षमत्व सिद्ध करने के लिये उस धर्म से पुरस्कृत धर्मी जो सत् और व्यापक है उसका ज्ञान कराते हैं। वैसा धर्मी परब्रह्म ही है न कि अन्य कोई। इस से भी सिद्ध होता है कि सब शब्द भगवद्वाचक ही हैं। शब्दमात्र प्रणव की विकृति होने के कारण सब शब्दों से परब्रह्म का ही बोध होता है। अत एव कहा है कि ''वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः'' ''सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति'' अर्थात् सम्पूर्ण वेदों से मैं ही वेद्य हूँ। सब वेद जिस के पद को मानते हैं। इत्यादि वाक्यों से भी पूर्वोक्त ही अर्थ सिद्ध होता है। ईशान, ईश्वर, सर्वेश्वर, परमेश्वर, महेश्वर, शम्भु, शिव, शङ्कर आदि सब शब्द मुख्यवृत्ति से परब्रह्म में ही पर्यवसित होते हुए योगरूढ हैं। शिवजी के अर्थ में या अन्य किसी अर्थ में उनका जो प्रयोग होता है वह भी भगवल्लीलासाधन व्यवहार के लिये ही शक्तिसंकोच करके होता है। जैसे कि किसी बालक का शिवेश्वर, नरसिंह आदि नाम पिता आदि रख देते हैं उसी तरह से व्यवहार्थ ही किसी प्रकार शक्तिसंकोच से पूर्वोक्त शब्दों का अर्थ किया जाता है।

और जिस प्रकार अब्जयोनि शब्द का अर्थ ''जो जगत्रय जब महाप्रलय में जलमग्न हो गये थे तब नारायण के नाभिकमल से जो ब्रह्माजी निकले'' इत्यादि वाक्योक्त ब्रह्मा के अर्थ में है- वही अर्थ कोशकार भी ''अज शब्द वेधा (ब्रह्मा) और कामदेव के अर्थ में है'' ऐसा कहता है। अब यदि कोश के प्रमाण के अनुसार अज शब्द का अर्थ देवता आदि के अर्थ में व्यवहारों की सिद्धि के लिये बनाया गया है। इसी प्रकार ईशानादि शब्द भी है, ऐसा श्रुत्याभास ही उन शब्दों का है। इसे

समाख्यावादियों का मत भी निरस्त हो जाता है।

वेदोक्त पुरुषसूक्त में भी शिवका ही वर्णन है यह भी कहना आस्तिक जनता को धोखा देना है। पुरुषसूक्त में साक्षात् विष्णु का ही वर्णन है न कि शिव का, इस विषय में श्रीपुरुषोत्तमजी महाराजने विस्तृत विवेचन किया है। वह राब स्थानाभावसे यहाँ अङ्कित नहीं कर सकते। और इस विषय में अधिक कहने की भी क्या आवश्यकता है ? सब कोई जानता है कि पुरुषसूक्त विष्णु का ही वर्णन करता है।

काल के अधिष्ठाता भी भगवान् ही हैं न कि शिवजी।

''नारायणपरं ब्रह्म तत्त्वं नारायणः परः'' इस श्रुति में पंचमी तत्पुरुष समास का आश्रय करके कहते हैं कि नारायण से परे जो तत्त्व है ब्रह्म है। यही लोगों को धोखा देना ही है। पंचमी समास करने में यहाँ कोई विनिगमक (प्रमाण) दीक्षितजी नहीं दे सकते।

अप्पय्यदीक्षित का कहना है कि गीता में भगवान् वासुदेव ने जो स्वरूप पार्थ-अर्जुन-को बताया था, वह स्वरूप शिवजी का था। और इसका प्रमाण यह कहा जाता है कि ''दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम्।'' इस वाक्य में ईश्वरका रूप बताया ऐसा कहा है। अर्थात् ईश्वरशब्द महादेववाचक होने के कारण यह सिद्ध होता है कि वह रूप महादेवजी का ही था। अब पाठक इस बात को स्वयं समझ सकते हैं कि आस्तिक जनता की आँख में धूल झोंकने का कैसा क्षुद्र प्रयत्न किया गया है ? दीक्षितजी का इस अनुचित आक्षेप का प्रत्युत्तर निम्नाङ्कित प्रकार से श्रीपुरुषोत्तमजी महाराजने दिया है।

श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि ''द्रष्टुमिच्छामि ते रूपम्'' अर्थात् अर्जुन प्रार्थना करता है कि भगवन् ! में आपका स्वरूप देखना चाहता हूँ। अर्जुन की प्रार्थना भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के ही स्वरूप के दर्शनार्थ की गई थी। और उन्हों ने अपना ही विराट्रूप बताया है। खैर, यदि आप के सन्तोष के लिये ''दुष्यतुदुर्जनन्याय' से मान भी ले कि भगवान् ने शिवजी का रूप बताया तो भी हानि क्या है ? आप के कथन से तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ही श्रेष्ठ सिद्ध होते हैं। उनकी सामर्थ्य कि उन्होंने अपने में ही सारे ब्रह्माण्ड के साथ ही शिवजी को भी बताया। अर्थात् जैसे इतना बडा ब्रह्माण्ड उनके स्वरूप में स्थित है वैसे ही शिवजी भी उन्हीं के स्वरूप में स्थित हैं।

जिस प्रकार यह कहना कि गीता में शिवजीस्वरूप का विराट्रूप से दर्शन कराया क्षुद्रता है, उसी तरह यह कहना भी कि महाभारतादिपुराणों में शिवजी का

ही वर्णन है। अट्ठारहों पुराण में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का ही यशोवर्णन है।

आगे चलकर गायत्री के विषय में दीक्षितजी ने प्रलाप किया है। दीक्षितजी अपने को स्वयं आस्तिक सिद्ध करना चाहते हैं पर शिवतत्त्वविवेक में आपने जो बातें लिखी है वे सब आपके प्रचण्ड पाण्डित्य को कलङ्कित करती हैं। शङ्कराचार्यजी ने भी गायत्रीभाष्य लिखा है उस में भी उन्होंने यह नहीं कहा कि गायत्रीमन्त्र शिवजी की स्तुति करता है। ये महाशय गायत्री को भी शिवपरक सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। दीक्षितजी ने इसमें भी सुबह की खाई है। श्रीपुरुषोत्तमजीने गायत्री की व्याख्या कारिकाओं में लिखीं हैं। प्रहस्तवाद के पाठकों को उचित है कि गायत्र्यर्थ सूक्ष्मदृष्टि से अध्ययन करें। गायत्री में साक्षात् पूर्णपुरुषोत्तम के ही स्वरूप का प्रतिपादन है। परब्रह्म ही सर्वश्रेष्ठ होने से वेदवृक्ष का बीज गायत्री से भी अतिरिक्त किसी अन्य तत्त्व का प्रतिपादन किस प्रकार होगा ?

अन्त में श्रीपुरुषोत्तमजीने यही सिद्ध किया है कि वेद और पुराणादि में निरुपधिक महामहिमशाली परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के बिना अन्य का प्रतिपादन नहीं किया गया। परब्रह्म सर्वाकार है। तथापि उसका मुख्य स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण ही है, अन्य स्वरूप विभूतिरूप है। विभूतियों में भी शिव मुख्य विभूति है। यही सकल शास्त्रों का निर्णय है।

इस प्रकार भ्रान्तशैवनिराकरण प्रकरण को समाप्त करके अनन्तर मूलरूप का निर्धार किया गया है। श्रीमदाचार्यचरणों ने कहा है कि आदिमूर्ति श्रीकृष्ण ही है।

श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज इस विषय को सुस्पष्ट करके प्रतिपादन करते हैं। शङ्का होती है कि मूलरूप सर्वाकार है और लीलावतार अनेक प्रकार के होने से गोपालतापिनी, रामतापिनी, नृसिंहतापिनी आदि उपनिषदों में तत्तत् अवतारों का मूलरूप से प्रतिपादन किया है। इससे सिद्ध होता है कि वे सब स्वरूप तुल्य हैं। तब आप कैसे कहते हैं कि श्रीकृष्ण ही मूलस्वरूप है ?

इस शङ्काका निर्णय आपने अनेक प्रमाण और अकाट्य युक्तियों से किया है। मूलस्वरूप का निर्णय करते समय श्रीपुरुषोत्तमजीने रामतापिनी, नृसिंहतापिनी आदि उपनिषदों और पौराणिक कथाओं का विशद रूपसे विचार किया है।

अन्त में ग्रन्थसमाप्ति करते हुए आप कहते हैं कि वैष्णवों के मार्ग में खलपुरुषों ने जो कीचड़ फेंका था वह श्रीवल्लभाचार्यमतानुवर्ती, और उन्हीं के दासानुदास पुरुषोत्तमने हटाकर वैष्णवों का मार्ग साफ सुथरा कर दिया है। इस वाक्य से श्रीपुरुषोत्तमजी की सरलता भी स्पष्ट रूप से दीखाई देती है।

पण्डितकरभिन्दिपालवाद

प्रहस्तवाद का ही संक्षेप पण्डितकरभिन्दिपालवाद में किया गया है। यह छोटासा ग्रन्थ भी उपादेय है। इस ग्रन्थ की समाप्ति में दुर्गा और गणपति आदि को भी जो लोग त्रिगुणात्मक कहते हैं उस का भी निर्णय किया गया है यही विशेषता है।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका के माघ १९८३ के अंक में पं. शिवदत्त शर्मा का ''श्रीकृष्णचन्द्राभ्युदय'' शीर्षक लेख छपा था। लेखकने आधुनिक एक कवि–जिनका नाम शङ्करलालजी था–के एक संस्कृतनाटक का परिचय कराया था। प्रस्तुत लेख एवं नाटक का तात्पर्य यह है, कि वेदप्रतिपाद्य भगवान् श्रीकृष्ण शिवभक्त थे। अतः वैष्णवों को भी उचित है कि वे विष्णुभक्ति एवं वैष्णव चिह्नों–तुलसीकाष्ठमाला, ऊर्ध्वपुण्ड्र आदि का परित्याग कर शिवभक्ति में तन्मय हो जाना चाहिये। उक्त नाटककार और नाटक के परिचायक महाशयों का कहना है कि हरिवंश में श्रीकृष्ण को शिवभक्त कहा है। जो लोग श्रीकृष्ण के शिवभक्त होने में सन्देह करते हैं उनको प्राचीन शास्त्रों का ज्ञान नहीं हैं अर्थात् वे लोग मूर्ख हैं, शास्त्रों का रहस्य समझ नहीं सकते। साथ ही नाटककार–टीकाकार पं. हाथीभाई शास्त्री एवं नाटक के परिचायक पं. शिवदत्तजी का कथन है कि यह नाटक आधुनिक समय में होनेवाले साम्प्रदायिक झगडों को दूर करने के लिये लिखा गया है। मेरी समझ से तो यह नाटक साम्प्रदायिक झगडों को उभाडने के उद्देश्य से ही लिखा गया है। इस नाटक का सूत्रपात किस प्रकार हुआ, उसका वर्णन पं० हाथीभाईने स्वयं ही भूमिका में लिखा है – ''एक समय नवानगरके जामकुलावतंस नरेन्द्र रणजीतसिंहजी और मोरबी नरेश प्रवास से लौटते हुए वीरमगाम में साथ हो गये और रेल में वाँकानेर जंकशन तक साथ साथ यात्रा करते रहे। मोरबी नरेशने विलायत यात्रा नहीं की थी, और उनका रहनसहन विशेष रूप से प्राचीन शैली का था। उन्होंने बात ही बात में जामसाहेब से कहा कि आप तो विलायत हो आये हैं, क्या वहाँ के परिचयसे स्वधर्माचरण त्याग दिया ? कंठी तिलक आदि आपके शरीरपर नहीं है। जामसाहबने उत्तर देते हुए कहा, कि, क्या आप कंठी तिलक धारण करने को ही धर्म समझते हैं ? मोरबी नरेन्द्र यह जानते थे कि जामसाहब यदुवंशी होनेपर भी शिव के उपासक हैं, अतः वे बोले कि आपने तो श्रीकृष्ण के वंशमें जन्म लिया है; अतएव आप को भगवान् श्रीकृष्णकी उपासना करना योग्य है। इसपर जामसाहब ने कहा कि, हाँ आप का वचन सत्य है, परन्तु मैं उनकी भक्ति

करता हूँ जिनकी भक्ति स्वयं श्रीकृष्णचन्द्र किया करते थे''।

जामसाहब के आश्रित पं.हाथीभाईने अपने अन्नदाता के वाक्यों का समर्थन करने के लिए शङ्करलालजी को उभाडा और उनसे श्रीकृष्णचन्द्राभ्युदय नाटक लिखवाकर उस पर स्वयं टीका लिखी। साथ ही वैष्णवों पर शास्त्र का रहस्य न जानने का दोषारोपण करते हुए अपने आपको शास्त्रोंका विशेषज्ञ सिद्ध करने का कुत्सित प्रयत्न किया है। हम को पं० हाथीभाई शास्त्री के प्रति व्यक्तिगत रूपसे कोई द्वेष नहीं है। वे वृद्ध हैं और संस्कृत भाषा के गण्यमान्य पण्डितों में गिने जाते हैं इसलिये वे हमारे लिये श्रद्धेय हैं। परन्तु हमारी श्रद्धा का यह अर्थ नहीं हो सकता कि हम उनके अनुचित कार्य की आलोचना न करें। यदि पं० हाथीभाई शास्त्री यह कहने का दावा रखते हैं कि जो लोग शास्त्रज्ञ नहीं है वे ही शिवाराधन नहीं करते, तो हमको भी कहने का पूर्ण अधिकार है कि शास्त्रीजी महाराज आप कृपाकर हमारे साथ बैठकर इस विषय का निर्णय करिये। न हम को किसी की साक्षी की आवश्यकता है, और न मध्यस्थ की। आप और हम बैठकर इस का विचार कर सकते हैं। पर शर्त यह है कि विचार शास्त्र की दृष्टि से होगा। परस्पर विरोधिवाक्यों का निर्णय मीमांसा के अनुसार किया जायेगा। और यदि आप को हमारे साथ बैठकर निर्णय नहीं करना है तो आप प्रहस्तवाद का ही अध्ययन करिये। आप को ज्ञात हो जायेगा कि वास्तविक तत्त्व क्या है ? किस प्रकार शास्त्रीय विचार किया जाता है ? मुँहसे कह देने मात्र से कोई मूर्ख या विद्वान् नहीं माने जाते। उनके कार्य ही योग्यता का परिचय करा देते हैं। यदि आप शास्त्रीय दृष्टि से इस विषय की मीमांसा करते तो उसपर अन्य विद्वानों को भी विचार करने का अवसर प्राप्त होता। आपने टीका में इधर उधर वाक्यों का सङ्ग्रह मात्र किया है न कि विचार। इसीलिये हम को कहना पडता है कि आप इस विषय पर फिर से विचार करिये, और इस वृद्धावस्था में अब अपनी करतूतों का सिंहावलोकन करके जो भूलें पहलें एक बार हो गई हैं उनको सुधारिये।

हमारी समझ से तो श्रीकृष्णचन्द्रभ्युदयनाटक की रचना करवाने में और उसपर स्वयं ही टीका लिखने में पं०हाथीभाई का एक दूसरा उद्देश्य होना चाहिये। और वह उद्देश्य यह भी हो सकता है, कि यह पुस्तक शारदापीठाधीश्वर माधवतीर्थ और वैष्णवों के बीच जिस समय विवाद उत्पन्न हो गया था, उसी समय यह पुस्तक तैयार की गई। इससे साफ जाहिर होता है कि माधवतीर्थ और उसके समर्थक हाथीभाई आदि के पास कोई शास्त्रीय प्रमाण न होने के कारण इस नाटक की रचना

करके जनता को धोखा देने का प्रयत्न किया गया है। परन्तु स्मरण रहे कि अब भारतीय जनता आप के भुलावे में नहीं पड सकती। अब दिन पर दिन प्राचीन साहित्य की खोज करके प्रसिद्ध करने का प्रयत्न बढता जा रहा है। आप के कल्पित नाटक की अपेक्षा सुशिक्षित जनसमाज में डॉ. भाण्डारकर आदि के शैव और वैष्णवधर्मों के विषय में गवेषणापूर्ण लेख एवं पुस्तकें अधिक विश्वसनीय मानी जाती हैं। यदि आप सहृदयता के साथ शैव

और वैष्णवों के विषय में कुछ भी जानना चाहते हैं तो अब जो प्राचीन साहित्य प्रकाशित हो रहा है उसका सूक्ष्म दृष्टि से मीमांसा की परिपाटी के अनुसार अध्ययन करिये।

उपसंहार

इस ग्रन्थको छपवाने में मेरे मित्र पं. वसन्तरामशास्त्रीजी ने बहुत परिश्रम किया है। आप के कार्यो से वैष्णवाचार्य और वैष्णवजनता भली प्रकार परिचित है। इस ग्रन्थ की भूमिका लिखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है यह भी पं. वसन्तराम शास्त्रीजी की ही कृपा का फल है।

अन्त में मैं वैष्णव जनता से विशेष विद्वत्समाज से प्रार्थना करता हूँ कि इस समय जो साम्प्रदायिक साहित्य प्रसिद्ध हो रहा है उसका अध्ययन अध्यापन में यथेष्ट उपयोग होना चाहिये। जब तक सम्प्रदाय में अध्ययन अध्यापन और विद्वत्सम्मान के प्रति उदासीनता रहेगी तबतक सम्प्रदाय की उन्नति की आशा करना गगनकुसुम की आशा के समान है।